बंधन एवं मुक्ति

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

बंधन का अर्थ है– परतंत्रता और मुक्ति का अर्थ है स्वतंत्रता। भारत देश पर अनेक आक्रमणकारियों ने समय–समय पर आक्रमण किया और यहां से धन लूटकर अपने देश ले गये। बहुत से आक्रमणकारी भारतीय संस्कृति में ही समा गये। कुषाण, शक, हूण, मंगोल आदि जातियां बड़ी ही बरबरता पूर्वक यहां पर आक्रमण करके भोले भाले भारतीय नागरिकों पर अत्याचार किये। लेकिन भारतीय संस्कृति की आत्मा को नहीं बदल सके। मुगलों और अंग्रेजों ने भी भारत पर कई शदियों तक राज्य किया। यद्यपि भारत परतंत्रता के पाश में बंधकर बहुत सी यातनाऐ झेली। किन्तु जब भारत का जनमानस जागृत हुआ तब अंग्रेजों को भारत छोड़कर जाना पड़ा। अंग्रेजी राज्य का बंधन और उसके नियम कानून भारतीय जनमानस के विरूद्ध थे। अंग्रेजों ने भारत माता को परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ रखा था। यहां की जनता बंधन से मुक्ति के लिए कराह रही थी और एक दिन ऐसा आया जब भारतीयों ने मिलकर अंग्रेजी शासन की नीवं को उखाड़कर के फेंक दिया और स्वतंत्रता का आनन्द लिया। स्वतंत्रता सबको प्रिय होती है। किसी भी तोते को यदि पिंजड़े में बांधकर रखा जाये और उसे खाने के लिए अच्छी–अच्छी वस्तुएं प्रदान की जाये फिर भी वह प्रसन्न नहीं रहता। वह मुक्त गगन में विचरन करना चाहता है। परतंत्रता किसी को प्रिय नहीं होती, स्वतंत्रता सबको प्रिय होती है। पशु, पक्षी, मानव सभी स्वतंत्र रहना चाहते है। यह तो बंधन का एक स्वरूप हुआ। दार्शनिक दृष्टि से यदि हम चिंतन करे तो बंधन और मुक्ति जीव के लिए आवश्यक है। जिनसे कर्म बंधे या कर्मों का बंधना बन्ध है। जो बंधे या जिसके द्वारा बांधा जाये या बन्धन मात्र को बन्ध कहते हैं। कषाय सहित होने से जीव कर्म के योग्य पुद्‌गलों को ग्रहण करता है, वह बन्ध हैं। कर्म प्रदेशों का आत्मप्रदेशों में एक क्षेत्रावगाह हो जाना, वह बन्ध है। मिथ्यादर्शनादि द्वारों से आए हुए कर्म पुद्‌गलों का आत्मप्रदेशों में एक क्षेत्रावगाह हो जाना बन्ध है। जैसे बेड़ी आदि से बंधा हुआ प्राणी परतन्त्र हो जाता है और इच्छानुसार देशादि में नहीं आ–जा सकता, उसी प्रकार कर्मबद्ध आत्मा परतन्त्र होकर अपना इष्ट विकास नहीं कर पाता। अनेक प्रकार के शरीर

और मानस दुःखों से दुःखी होता है। राग–द्वेषादि के निमित्त से जीव के साथ पौद्गलिक कर्मों का बन्ध निरन्तर होता है। जीव के भावों की विचित्रता के अनुसार वे कर्म भी विभिन्न प्रकार की फलदान शक्ति को लेकर आते हैं, इसी से वे विभिन्न स्वभाव या प्रकृति वाले होते हैं। प्रकृति का अर्थ स्वभाव है। जिस प्रकार नीम की क्या प्रकृति है? कडुआपन। गुड़ की क्या प्रकृति है? मीठापन। उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म की क्या प्रकृति है? अर्थ का ज्ञान न होना इत्यादि। जीव के प्रदेशों की उथल–पुथल को अस्थिति तथा उथल–पुथल न होने को स्थिति कहते हैं। जिसका जो स्वभाव है, उससे च्युत न होना स्थिति है। जिस प्रकार बकरी, गाय और भैंस आदि के दूध का माधुर्य स्वभाव से च्युत न होना स्थिति है, उसी प्रकार ज्ञानावरण आदि कर्मों का अर्थ का ज्ञान न होने देना आदि स्वभाव से च्युत न होना स्थिति है। विविध प्रकार के पाक अर्थात् फल देने की शक्ति का पड़ना ही अनुभव है। शुभाशुभ कर्म की निर्जरा के समय सुख–दुःख रूप फल देने की शक्ति वाला अनुभाग बन्ध है। कर्म रूप से परिणत पुद्गल स्कन्धों का परमाणुओं की जानकारी करके निश्चय करना प्रदेशबन्ध है। दो के बिना बन्ध नहीं होता। एक हाथ से ताली जिस प्रकार नहीं बज सकती, उसी प्रकार बन्ध तत्त्व भी एक के बीच में नहीं हो सकता। सांसारिक जो विषय–सामग्री है, वह और उसका जो भोक्ता है आत्मा ये दोनों संयोग होते ही बन्ध हो जाते हैं। कर्म पुद्गलों के ग्रहण को बन्ध कहा जाता है। जीव के द्वारा कर्म पुद्गलों का ग्रहण क्षीर–नीर की भांति परस्पर आश्लेष होता है, उसे बन्ध कहा जाता है। वह प्रवाहरूप से अनादि और जो भिन्न–भिन्न कर्म बंधते रहते हैं, उनकी अपेक्षा सादि है। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और मन, वचन, काय की प्रवृत्ति ये सब कर्मों के आने के द्वार होने से आस्रव हैं। इनसे विपरीत सम्यक्त्व, देशव्रत, महाव्रत, मोह व कषायहीन शुद्धात्म परिणति तथा मन, वचन, काय के व्यापार की निवृत्ति ये सब नवीन कर्मों के निरोध के हेतु होने से संवर हैं। आसव्र का निरोध करना ही संवर है। जिनसे कर्म रुकें, वह कर्मों का रुकना संवर है। नगर के द्वार अच्छी तरह बन्द हों, वह नगर शत्रुओं को अगम्य है। जीव का चरम और परम लक्ष्य है– मोक्ष प्राप्ति। जिसने समस्त कर्मों का क्षय करके अपने साध्य को सिद्ध कर सफलता प्राप्त कर ली वह मोक्ष का अधिकारी है। बन्ध हेतुओं मिथ्यात्व व कषाय आदि के अभाव और निर्जरा से सब कर्मों का आत्यन्तिक क्षय होना ही मोक्ष है। कर्मों

का पूर्ण रूप से छूटना मोक्ष है। सम्यग् दर्शनादि कारणों से सम्पूर्ण कर्मों का आत्यान्तिक मूलोच्छेद होना मोक्ष है। जिस प्रकार बन्धन युक्त प्राणी स्वतन्त्र होकर यथेच्छ गमन करता है, उसी तरह कर्म–बन्धन मुक्त आत्मा स्वाधीन हो अपने अनन्त ज्ञानदर्शन सुख आदि का अनुभव करता है। मनुष्य गति से ही जीव को मोक्ष होना संभव है। आयु के अन्त में उसका शरीर कपूरवत उड़ जाता है और वह स्वाभाविक ऊर्ध्व गति के कारण लोक शिखर पर जा विराजता है, जहाँ वह अनन्तकाल तक अनन्त अतीन्द्रिय सुख का उपभोग करते हुए अपने चरम शरीर के आकार रूप से स्थित रहता है और पुनः शरीर धारण करके जन्म–मरण के चक्कर में कभी नहीं पड़ता। ज्ञान ही उनका शरीर होता है।